संस्कृत काव्यशास्त्र

आधुनिक आयाम

प्रधान सम्पादक

प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

सम्पादक

डॉ. नौनिहाल गौतम

डॉ. सञ्जय कुमार

डॉ. रामहेत गौतम

डॉ. शशिकुमार सिंह

डॉ. किरण आर्या

संस्कृत विभाग

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर

(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

Smt Leelavati Mulayam Singh Library ★ Dr. Ramhet Gautam ★ No. ....

अनुज्ञा

Scanned by CamScanner

संस्कृत परिषद, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर म.प्र. के आंशिक आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

वैधानिक चेतावनी

पुस्तक के किसी भी अंश के प्रकाशन, फोटोकॉपी, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में उपयोग के लिए लेखक व प्रकाशक की लिखित अनुमति आवश्यक है। पुस्तक में प्रकाशित आलेख/आलेखों के सर्वाधिकार मूल रचनाकार/रचनाकारों के पास सुरक्षित हैं। पुस्तक में व्यक्त विचार पूर्णतया लेखक/लेखकों अथवा संपादक/संपादकों के हैं। यह जरूरी नहीं है कि प्रकाशक इन विचारों से पूर्ण या आंशिक रूप से सहमति रखे। किसी भी विवाद के लिए न्यायालय दिल्ली ही मान्य होगा।

© लेखक

प्रथम संस्करण : 2019

ISBN 978-93-86835-73-4

प्रकाशक

अनुज्ञा बुक्स

1/10206, लेन नं. 1E, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110 032

e-mail : anuugyabooks@gmail.com • salesanuugyabooks@gmail.com

फोन : 011-22825424, 09350809192

www : anuugyabooks.com

मूल्य : 500 रुपये

आवरण

मीना-किशन सिंह

मुद्रक

अर्पित प्रिंटोग्राफर्स, दिल्ली-32

SANSKRIT KAVYASHASHTRA

Literary Criticism *edited by* Ananad Prakash Tripathi

Scanned by CamScanner

अनुक्रम

सौन्दर्यशास्त्र की भारतीय परम्परा 11
राधावल्लभ त्रिपाठी

आधुनिककाव्यशास्त्रे काव्यप्रयोजनम् 59
नारायणदाशः

आधुनिक संस्कृत साहित्यशास्त्र में काव्यप्रयोजन 65
बाबूलाल मीना

मुक्तेः काव्यप्रयोजनत्वम् 80
धर्मेन्द्रकुमारसिंहदेवः

अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र में मुक्ति 89
ऋषभ भारद्वाज

आचार्यराधावल्लभीयकाव्यहेतोरभिनवत्वम् 93
पूर्णचन्द्र उपाध्यायः

आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र का काव्यलक्षण-गत वैशिष्ट्य 97
नौनिहाल गौतम

प्रमुख अर्वाचीन काव्यलक्षण 103
जयप्रकाश नारायण

काव्याधिकरणानुभूतिविमर्शः 109
रहसबिहारी द्विवेदी

लोकानुकीर्तनं काव्यम् 133
रामहेत गौतम

अभिराजयशोभूषणम् में काव्य-स्वरूप 143
शिवपूजन चौरसिया

काव्यालङ्कारकारिका के आलोक में अलङ्कार की काव्यात्मकता 150
प्रदीप दुबे

Scanned by CamScanner

लोकानुकीर्तनं काव्यम्

रामहेत गौतम

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको विराजति।।[1]

प्रकाशस्वरूप, सबका प्रेरक और कामना करने योग्य परम तत्त्व ही बीते समय में, वर्तमान में और भविष्य में भी सर्वत्र, सर्वदा प्रियवस्तु समन्वित सम्पूर्ण विश्व का एकमात्र सम्राट् होकर सर्वत्र व्याप्त हो रहा है।

याज्ञवल्क्य ऋषि ने राजा जनक को उपदेश देते हुए कहा था कि अन्तःकरण ही मनुष्य का सबसे बड़ा व प्रमुख मार्गदर्शक व पथप्रदर्शक है। अन्तःकरण उस परम तत्त्व आनन्द की गुह्य है, जिससे समस्त भूत उत्पन्न होते हैं, उससे ही प्रयाण करते हैं और उसी में प्रविष्ट हो जाते हैं।

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्त आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीत्याह भगवती श्रुतिः।[2]

आनन्द की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी कहते हैं— विहगाः स्वत एव कूजन्ति ...तत्रापि विहगकूजनस्य स्वतस्त्वे वस्तुतः आनन्दाधिगमः प्रयोजनं विहगानां तस्मिन्नेव मुक्तेरनुभवः।[3] (पक्षी स्वतः ही चहकते हैं। वह उनका स्वाभाविक कर्म है। वास्तव में पक्षियों के स्वतः कूजन में भी आनन्द प्राप्ति ही प्रयोजन है; पक्षियों को उसी में मुक्ति का अनुभव होता है।) पक्षियों के स्वाभाविक कूजनादि कर्म की भाँति कवि का काव्य कर्म है। कवि काव्यकर्म आनन्दाप्ति के लिए ही करता है। काव्यकर्मणोऽपि आनन्दाप्तिः प्रयोजनं ग्राह्यम्[4] कवि की काव्य कर्म में प्रवृत्ति व्यक्ति के आनन्द के लिए नहीं, सम्पूर्ण जगत् के आनन्द के लिए होती है। अतः आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी कहते हैं कि—येऽप्याहुरमुकेन अमुकेन ऋषिणा मुक्तिरधिगता, तत्त्वसर्वं प्रवादमात्रम् न हि काऽपि व्यक्तिरिह अन्याभिर्व्यक्तिभिः पृथग्भूता। तस्मादेका व्यक्तिर्मुक्तिं लभेताऽन्याचार्यायाऽनि मुक्तिः स्यात् सा समेषामेव स्यात्।[5] अर्थात् कुछ ऋषियों ने जो कहा है कि अमुक ऋषि ने मुक्ति प्राप्त की है, वह सब प्रमाद मात्र है। लोक में कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अलग नहीं है। अतः एक व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करे और दूसरा अमुक्त रहे यह कैसे सम्भव है। जो भी मुक्ति होगी वह सभी की होगी।

कवि प्रजापति से श्रेष्ठ है क्योंकि प्रजापति की सृष्टि त्रिविध दुःखों से युक्त है।

Scanned by CamScanner

जबकि कवि की सृष्टि त्रिविध दुःखों से मुक्ति के लिए है। 'मुक्तिस्तस्य प्रयोजनम्[6]'। आहार, प्रीति, अपद्वेष, प्लवन आदि प्रतिभाजनित क्रियाएँ प्रत्येक वाणी में होती हैं। उसी प्रकार मनुष्य में भी प्रतिभा व्याप्त है। परन्तु जागरिता अर्थात् स्पन्दनशीलता व्यक्ति विशेष में ही होती है। वह व्यक्तिविशेष जीवन और जगत् के यथार्थ से सरोकार रखता है। व्याध द्वारा निहत, खून से लथपथ पृथ्वी पर तड़पते क्रौञ्च तथा उसकी पत्नी को बिलखते देखकर शोकविह्वल वाल्मीकि की भाँति भौतिक जगत् के किसी दृश्य से उद्वेलित जागरिता स्पन्दनशील प्रतिभा वाले कवि के अवचेतन के अज्ञात स्तरों पर अत्यन्त जटिल तथा दुरूह काव्यसर्जना की प्रक्रिया घटित होती है। स्पन्दनशील व्यक्ति के अन्तर्मन में निहित भाव तत्त्व मन के संकल्प-विकल्प से गुजरते हुए बुद्धि तत्त्व से निश्चित होकर परिष्कृत रूप में काव्य में रूपान्तरित होकर सर्वथा नवीन और अछूते उत्कृष्टतम शब्दों के सुगठित समूह के रूप में वाणी द्वारा उसी प्रकार उद्घाटित होता है जैसे कि किसी पेड़ में कोंपले, व कुसुम फूटते हैं।

इस प्रकार नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा वल्लरी की उन्मुक्त गोद में विकसित होने वाले काव्यकुसुम की परिभाषा नित-नित नूतन रूप धारण करती रही है। वेदों से आरम्भ होकर वर्तमान तक प्रवाहमान् काव्यसरिता ने कई मार्ग रचे, कई रूप धरे। अतः भरत से मम्मट तक और पण्डितराज जगन्नाथ से लेकर वर्तमान के काव्यशास्त्रियों तक काव्य को लक्षण के साँचे में ढालने का प्रयास निरंतर जारी है। यह आनन्द (काव्य) नितनूतन निराकार है। आनन्द के विषय में जिसने जैसी भावना की, उसने वैसा ही पाया। यह अमूर्त आनन्द हवा के झोंकों से हिलते पेड़ों के पुष्प-पराग-गन्ध की भाँति किसी की पकड़ में नहीं आ रहा। क्योंकि काव्य लोक के अवलोकन से वाष्पित होता है। यह लोक परिवर्तनशील है। काव्य का स्रष्टा मानव है। मानव के व्यावहारिक क्षेत्र लोक में परिवर्तन आते ही काव्य के क्षेत्र में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। क्योंकि काव्य (साहित्य) समाज का दर्पण है। जो समाज के सार्वभौम व शाश्वत सत्य को प्रतिबिम्बित कर समाज के क्लेशमुक्ति तथा आनन्दाप्ति में सहायक होता है। उद्वेलित जागरिता स्पन्दनशील प्रतिभा वाले कवि आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी भरत, भामह, दण्डी और मम्मट आदि के अनुशीलनाराधना के साथ काव्य का सर्वथा नवीन लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि-लोकानुकीर्तनं काव्यम्।[7] लोक का अनुकीर्तन काव्य है।

लोक के संबंध में जिज्ञासा होती है कि लोक क्या है?

1. लोक का सामान्य अर्थ : लोक 'लोकृ' धातु से घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है–'लोकयति, भासते, लोकते, पश्यति वा।' जो भासित होता है या प्रकाशित होता है तथा जो देखता (द्रष्टा) है वह सब 'लोक' है।

2. परम्परागत विद्वानों द्वारा स्वीकृत अर्थ : अभिनवभारतीकार अभिनव

Scanned by CamScanner

गुप्त के 'लोको ना जनपदवासी जनः। जनपदश्च देश एव मम्मट 'लोकस्य स्थावरजङ्गात्मकलोकवृत्तस्य..' वह लोक तीन प्रकार का होता है—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक।

3. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रकार द्वारा स्वीकृत अर्थ : आचार्य त्रिपाठी ने लोक का आशय व्यक्त करते हुए कहा है कि चेतना से विभाव्यमान समस्त भुवन लोक है जो प्रतिक्षण परिवर्तनशील और विकासशील है। चेतनया विभाव्यमानं सकलमेव भुवनं लोक इति वक्तव्यम्, लोकोऽयं न स्थाणुः, न वा स्थिरोऽपि तु प्रतिक्षणं परिवर्तमानो विकसँश्च वरीवर्ति।[8] कवि के द्वारा दिव्य आर्षचक्षु से अथवा चर्मचक्षु से जो भी देखा जाता है, वह भी लोक है— कविना यद् दिव्येन आर्षेण चक्षुषा चर्मचक्षुषा वा साक्षातक्रियते रयते तदपि लोकः।[9] आचार्य त्रिपाठी ने लोक को तीन प्रकार का माना है।

आधिभौतिक : ज्ञानेन्द्रियानुभूयमान् पंचभूतात्मक जगत् आधिभौतिक है। पृथ्वी, अंतरिक्ष, स्वर्ग, समस्त दिशाएँ, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि ज्योति तत्त्व, जल, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, आकाश और अन्नमय स्थूल शरीर आदि स्थूल तत्त्वों का अन्तर्भाव आधिभौतिक लोक में ही हो जाता है। यह समस्त मनुष्यों के कार्यकलापों व काव्य कला का आधार है। इसके नष्ट होते ही मनुष्य के सभी व्यवहार नष्ट हो जाते हैं।

आधिदैविक : यह मानस साक्षात्कार जनित है; क्योंकि देवता मनःसंकल्प रूप-सा प्राणरूप है। देवानां मानसी सृष्टिरिति नाट्यशास्त्रोक्तेः।[10] मन से ज्ञानेन्द्रियों को प्रेरित करता हुआ व्यक्ति उस संकल्प से वस्तु के जिस नवीन रूप का अवलोकन करता है, या उसकी रचना करता है, वहाँ आधिदैविक लोक विलसित होता है।

आध्यात्मिक : वस्तु मात्र का प्रतीयमान स्वरूप उसकी आत्मा है। उस आत्मा में जो होता है वह अध्यात्म है। अतः वस्तु का आध्यात्मिक रूप अध्यात्म है।

अनुकीर्तनम् : शब्दार्थ

1. अनुकीर्तनम् का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ : पश्चात् अर्थ में अनु उपसर्ग पूर्वक कथन या वर्णन करने, नाम लेने के अर्थ में 'कृत्' धातु में ल्युट् प्रत्यय लगकर अनुकीर्तनम् पद बनता है। जिसका अर्थ होता है—पूर्व से विद्यमान किसी विषय या वस्तु का वर्णन।

2. परम्परागत अर्थ : कीर्तन का परम्परागत अर्थ गुण वर्णन, स्तुति आदि से लिया जाता है।

3. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रकार द्वारा स्वीकृत अर्थ : अनु पश्चात् कीर्तनं कथनम् तेन लोकस्य पूर्ववर्तित्वं, काव्यस्य पश्चाद्वर्तित्वं च नियतम् अनुकीर्तनं शब्दैः

Scanned by CamScanner

पुनराविष्करणम् (अनु अर्थात् पश्चात्, कीर्तन कथन करना। पूर्व से विद्यमान लोक का ही अनुकीर्तन होता है, अतः लोक की पूर्ववर्तिता और काव्य का पश्चात्वर्ती होना निश्चित है। शब्दों के माध्यम से लोक के पुनराविष्करण को अनुकीर्तन कहते हैं।)

अनुकीर्तन अनुन्मीलन (कवि मानस में काव्यवस्तु या लोक का प्रथम उन्मेष), अनुदर्शन (उन्मिषित काव्यवस्तु का कवि के द्वारा अन्तःकरण में दर्शन करना), अनुभव (काव्यवस्तु वर्णन के लिए वस्तु के स्वरूप या शब्दार्थ का आविष्कार) और अनुव्याहरण (अनुभूत काव्य वस्तु का श्रवण या पठन योग्य स्फुट शब्दों से कथन करना) इन चार अवस्थाओं से गुजरते हुए पूर्णता को प्राप्त करता है। यह कवि मानस में भी काव्यवस्तु के पुनः-पुनः अनुसन्धान से हो सकता है। आचार्य त्रिपाठी अपने मत की पुष्टि में ऐतरेय महीदास के कथन को उद्धृत करते हैं—इदमेवानुकीर्तनम् ऐतरेयमहीदासो अनुकृतिमित्याह।[11]

कविमानस में लोकवस्तु के पुनः-पुनः अनुसन्धान से पूर्णता को पा लेने पर काव्यवस्तु (अर्थ) शब्द के सहभाव से काव्यरूप को प्राप्त करता है। यह काव्य रचना-प्रक्रिया व्याकरण और मीमांसा आदि शास्त्रों में प्रसिद्ध शब्द और अर्थ का सहभाव से भिन्न काव्योपयोगी सहभाव है। यह ही साहित्य है। इसे ही कुन्तक ने काव्य माना है।

साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काऽप्यसौ।
अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थितिः।।[12]

आचार्य कुन्तक का विचार है कि वक्रता से विचित्र गुण और अलंकार सम्पत्तियों का परस्पर स्पर्धा से अधिरोह ही यहाँ विशिष्ट साहित्य है। आचार्य त्रिपाठी ने शब्दार्थ के परस्पर अधिकता व न्यूनता से रहित मनोहारिणी अवस्थिति के अपूर्व सहभाव को ही साहित्य माना है।

लोकानुकीर्तनम् काव्यम् : इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य का सरोकार जीवन से है और जीवन त्रिविध लोकों का विकास और समुल्लास है। अतः हम कह सकते हैं कि जीवन के विकास और समुल्लास का आश्रय पुनराविष्करण (लोक की घटनाओं आदि के आस्वाद का शब्दों के माध्यम से अनुवाद) को ही अनुकीर्तन कहते हैं। तस्य लोकस्यानुकीर्तनं शब्दैः पुनराविष्करणम्[13] इस प्रकार हम पाते हैं कि—त्रिविध लोक विविधतापूर्ण व्यवहार, दृश्य से प्रेरित होकर चर्मचक्षु से देखे गये तत्त्वों, दृश्यों को अपनी कल्पनाशीलता, शब्दचयन्, शब्द-नियोजन, भावपूरण की असाधारण प्रतिभा से असाधारण नवीनता प्रदान कर सर्वथा नवीन सृष्टि करता है जो मूल जगत् तो नहीं पर उससे कम नहीं होती। यह जगत् की अनुभूतियों (आस्वाद्) का अनुवाद होता है।

Scanned by CamScanner

पूर्व मतों की अनुकूलता

केवल शब्द को काव्य मानने वाले आचार्य, (आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ), शब्दसमूह वाक्य को काव्य मानने वाले आचार्यों (भरत, दण्डी, राजशेखर, जयदेव, आचार्य विश्वनाथ, आचार्य विश्वनाथ देव), शब्दार्थ युगल को काव्य मानने वाले आचार्यों (भामह, वामन, कुन्तक, भोज, आनन्दवर्धन, मम्मट, हेमचन्द्र, विद्यानाथ, पण्डितराज चूड़ामणि दीक्षित, नरसिंह कवि, श्रीकृष्ण शर्मा, आचार्य विद्याराम, चिरञ्जीव रामदेव भट्टाचार्य, अच्युतराय 'मोडक', सोमेश्वर शर्मा, बद्रीनाथ झा, बालब्रह्मभट्टशास्त्री, आचार्य छज्जूराम शास्त्री, हरिदास सिद्धान्त वागीश), शब्दार्थयुगलेतर तत्त्व को काव्य मानने वाले आचार्यों (डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा, आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी) के मतों का समन्वय करते हुए आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने कहा है कि शब्दाश्च भवन्ति सार्थाः। इत्थमनुकीर्तनमिति पदेन निर्दुष्टयोः सगुणयोः सालंकारयोः रसाभिव्यंजकयोश्च शब्दार्थयोः संग्रहः अनेनानुकीर्तनेन काव्ये पूर्णता आयाति, सैव अलंकारः। अर्थात् शब्द अर्थवान् होते हैं। इस प्रकार अनुकीर्तन पद के द्वारा दोष रहित? गुणयुक्त, सालंकार तथा रसाभिव्यञ्जक शब्द और अर्थ का संग्रह यहाँ हो जाता है। इस अनुकीर्तन से काव्य में पूर्णता आती है। 'वह पूर्णता ही अलंकार है।' कथन के द्वारा आचार्य त्रिपाठी ने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के मतों को अपने काव्य लक्षण में समन्वित कर लिया है। काव्यशास्त्र परम्परा के पूर्वपुरुष आचार्य भरत के नाट्य लक्षण 'भावानुकीर्तनं नाट्यम्' का अनुकरण करके ही त्रिपाठी जी ने अपना काव्य लक्षण 'लोकानुकीर्तनं काव्यम्' प्रस्तुत किया है। भरत मुनि को अभीष्ट शब्दशय्या की अर्थबोध की दुरूहता अविश्वसनीयता का त्याग, कोमलता और लालित्य की अन्विति और प्रतिपाद्य भावना के अनुकूल संवेदना को उभारने की क्षमता को अनुकीर्तनम् के अनुभव और अनुव्याहरण के अन्तर्गत समन्वित कर लिया है।[14] भामह के शब्दालंकार और अर्थालंकार के समन्वयवादी काव्य लक्षण 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'[15] की अन्विति भी आचार्य त्रिपाठी ने अनुभव और व्याहरण के अन्तर्गत मानी है। अनुदृष्टायास्तस्या वर्णनाय वस्तुनो रूपस्य शब्दार्थयोर्वाऽऽ-विष्कारोऽनुभवः। अनुभूतायास्तस्याः स्फुटैः शब्दैर्गोचरीभवितुमर्हं कथनमनुव्याहरणम्।[16] दण्डी ने इष्टार्थ (सरस, मनोहर और आह्लादपूर्ण अर्थ) की अभिव्यंजना करने वाली पदावली को ही काव्य माना है।[17] दण्डी के इष्टार्थ को त्रिपाठी ने अनुभूत काव्यवस्तु मानते हुए इष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली को अनुव्याहरण (श्रवण या पठन योग्य स्फुट शब्दों से कथन करना।) माना है। इस प्रकार दण्डी के काव्य लक्षण का समन्वय आचार्य त्रिपाठी के काव्य लक्षण में हो जाता है। आचार्य वामन ने काव्य होने के लिए शब्दार्थयुगल को गुण और

Scanned by CamScanner

अलंकारों से युक्त होने की बात कही। 'काव्यं ग्राह्यंमलंकारात्।.. काव्यशब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते। भक्त्या तु शब्दार्थमात्रवचनोऽत्र गृह्यते।'[18] राजशेखर ने भी वाक्य को ही काव्य माना है। गुणवदलङ्कृतं च वाक्यमेव काव्यम्[19] आचार्य त्रिपाठी ने गुण और अलंकार को अनुकीर्तन की पूर्णता का साधन माना है। इत्थमनुकीर्तनमिति पदेन निर्दुष्टयोः सगुणयोः सालङ्कारयोः रसाभिव्यञ्जकयोश्च शब्दार्थयोः संग्रहः।[20] यहाँ अग्निपुराण के काव्य को दोषों से बचाने की बात भी पदेन निर्दुष्टयोः... कहकर अपने लक्षण में समाविष्ट कर लिया है। 'काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद् दोषवर्जितम्[20] कुन्तक का 'भणिति वैदग्ध (कथन चातुर्य)' जो श्रोता पाठक के हृदय को आह्लादित (खुश) करने की क्षमता (बाँकपन) रखता है,[21] को रसाभिव्यञ्जकयोः शब्दार्थयोः संग्रहः कहकर हृदयाह्लादक कथन चातुर्य को शब्दार्थ नियोजन के द्वारा रसाभिव्यञ्जना माना है। भोज ने 'रसान्वितम्' विशेषण जोड़कर अग्निपुराण की बात दोहरा दी।[22] यद्यपि आनन्दवर्धन ने काव्य का लक्षण नहीं दिया फिर भी ध्वनि को काव्य की आत्मा मानते हुए शब्दार्थ के सहभाव को ही काव्य माना है। 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति। शब्दार्थशरीरं तावत् काव्यम् सहृदयहृदयाह्लादि शब्दार्थमयत्वमेव किं काव्यलक्षणम'[23]। आचार्य मम्मट ने भामह के शब्दार्थ युगल, वामन की काव्यसंस्कार के लिए गुण और अलंकारों की उपादेयता, अग्निपुराण का दोषों से बचाव, भोजदेव का गुण-अलंकार-रस से युक्त होना, आदि पूर्वाचार्यों के भिन्न-भिन्न मतों में समन्वय बैठाते हुए 'अनलङ्कृती पुनः क्वापि' जोड़कर काव्यलक्षण प्रस्तुत किया। 'तददोषौ शब्दाथौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि।'[24] रसादि के अपकर्षक दोषों से रहित, नवरस के विधायक ओज-प्रसाद-माधुर्य गुणों से युक्त, शब्दालंकार-अर्थालंकारों से अलंकृत शब्दार्थ युगल ही काव्य है, जो काव्यशास्त्र परम्परा में मील का पत्थर साबित हुआ। फिर भी, मम्मट के काव्य लक्षण की भी काव्यशास्त्र जगत् में पर्याप्त आलोचना हुई। आचार्य विश्वनाथ ने विशेषणांश पर और पण्डित राजजगन्नाथ ने विशेष्यांश पर आपत्ति उठायी। टीकाकार द्वारा मम्मट को अर्थ की अपेक्षा शब्द का पक्षपाती बताया है। आचार्य मम्मट की अपेक्षा आचार्य त्रिपाठी का काव्यलक्षण अधिक व्यापक और मम्मट के काव्यलक्षण को समन्वित करने वाला है। इत्थमनुकीर्तनमिति पदेन निर्दुष्टयोः सगुणयोः सालङ्कारयोः रसाभिव्यञ्जकयोश्च शब्दार्थयोः संग्रहः। हेमचन्द्र[25] और विद्यानाथ[26] ने नया कुछ भी नहीं कहा। जयदेव ने गुण और अलंकारों के साथ रीतियों और वृत्तियों को काव्य का आवश्यक अंग माना है। जयदेव ने भी वाक्य को ही काव्य माना है।[27] जो कि त्रिपाठी जी के अनुकीर्तन के अनुभव और अनुव्याहरण के अंतर्गत आ जाते हैं। विश्वनाथ का रसात्मक वाक्य[28] अतिव्याप्ति दोष की चपेट में हैं। पण्डित राज जगन्नाथ ने लोकोत्तर आह्लाद को रमणीय अर्थ कहा। उस रमणीय अर्थ के प्रतिपादक

Scanned by CamScanner

शब्द को काव्य कहा।[29] आचार्य त्रिपाठी द्वारा लोक की अवधारणा इतनी व्यापक कर दी गयी है कि इस लोक में रहते हुए इसी लोक के कवि द्वारा अनुभूत आनन्द लोकोत्तर कैसे हो सकता है? पण्डितराज जगन्नाथ के रमणीय अर्थ को लोकोत्तर न मानकर विशेष या अनन्त माना है पण्डित राज जगन्नाथ के परवर्ती आचार्यों में आचार्य राजचूड़ामणि दीक्षित ने मम्मट के लक्षण की ही पुनरावृत्ति की है।[30] आचार्य विश्वनाथ देव ने ब्रह्मानन्द सदृश आनन्दानुभूति कराने वाले वाक्य को काव्य माना है।[31] नरसिंह कवि ने सरस शब्दार्थ सङ्घटनात्मक कर्म को काव्य माना है।[32] श्री कृष्ण शर्मा शब्दार्थ युग्म को ही काव्य मानते हैं।[33] आचार्य विद्याराम ने परम्परागत लक्षण को ही दोहराते हुए छन्दोबद्ध शब्दार्थ को काव्य माना है।[34] चिरञ्जीव रामदेव ने चमत्कार को काव्य माना है।[35] अच्युतराय 'मोडक'[36], सोमेश्वर शर्मा[37], बद्रीनाथ झा[38], बालकृष्ण भट्ट शास्त्री[39], आचार्य रहस बिहारी ने वाक्य को काव्य माना है।[40] इन सभी आधुनिक आचार्यों ने भामह से जगन्नाथ तक के काव्य लक्षणों की बातों को ही घुमा-फिराकर प्रस्तुत किया है। नवीन परम्परा के आचार्यों में आचार्य रेवा प्रसाद द्विवेदी ने अपने काव्य लक्षण में कुछ नवीनता लाते हुए आत्मवानर्थ संघातविज्ञान को काव्य माना है। आत्मवानर्थसंघातविज्ञानं काव्यमिष्यते।[41] काव्य तो विशिष्ट ज्ञान आनन्द रूप है। डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा सत्यानुभूति को काव्य की आत्मा मानते हैं।[42] आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी आत्मवानार्थसंघात विज्ञान अनुभूति और ब्रह्ममानन्द शर्मा की सत्यानुभूति को अनुन्मीलन, अनुदर्शन, और अनुव्याहरण इन चार अवस्थाओं से स्फुट शब्दार्थ कथन को ही अनुकीर्तन मानते हैं।

आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ये तीनों परस्पर अनुषक्त हैं। तीनों का सकल समुल्लास ही जीवन है और वह जीवन साहित्य में प्रतिफलित होता है। लोकों की यह त्रिविधता सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और स्थूल-से-स्थूल तत्त्वों को अपने में समेटे हुए है। इस लोक के किसी दृश्य से अनुप्रेरित रचनात्मक अनुभूति के उद्वेलन से ही कविता की सर्जना होती है।[43] इस लोक के दृश्य से प्रेरित कविबुद्धि प्रसूत कविता इस लोक से इतर अर्थात् अलौकिक कैसे हो सकती है। कविता विशिष्ट या असाधारण तो हो सकती है परन्तु अलौकिक नहीं। कविता की असाधारणता को ही पूर्वाचार्यों ने लोकोत्तर कहा है।

काव्य की लौकिकता : कविता की अलौकिकता के मत का खण्डन-अलौकिक परमसत्ता का भी अन्तर्भाव इसी लोक में करते हुए आचार्य त्रिपाठी जी तर्क देते हैं कि–तस्य परब्रह्मणः साक्षात्कारोऽत्रभवद्भिरस्मिन् लोके स्थित्वा क्रियते, अन्यत्र गत्वा वा? यदि अस्मिन् लोके स्थित्वा एव क्रियते तर्हि सिद्धमेव लोकान्तर्वतित्वं तस्य ब्रह्मणः।[44] पूर्वाचार्यों ने जो कुछ भी लोकोत्तर कहा है उसे त्रिपाठी जी ने विशेष या अनन्त माना है। अमुमेव विशेषं प्रसिद्धिव्यतिक्रमं वा क्वचिदलौकिकत्वं कविताया

Scanned by CamScanner

आमनन्ति आचार्याः।[45]

कविता का त्रैकालिकत्व : आधिभौतिक जगत् वर्तमान से अनुबद्ध होता है, आधिदैविक जगत् और आध्यात्मिक जगत् अतीत और अनागत (भूत और भविष्य) कालों से अनुबद्ध होते हैं। तीनों लोक के अन्तर्गत समाविष्ट हैं। चतुःपुरुषार्थ अनुषक्ति की भाँति ये तीनों लोक भी परस्पर अनुषक्त हैं। अनुषक्तत्वं चैतेषां त्रयाणामिति।[46]

काव्यार्थ का आनन्त्य : आचार्य त्रिपाठी ने काव्यार्थ के आनन्त्य को सिद्ध करने के लिए आनन्दवर्धन को उद्धृत किया है–यह चेतनों और अचेतनों का स्वभाव ही है कि उनमें अवस्था, देश, काल और स्वरूपभेद से अनन्तता आती है।

त्रिविध लोकों का विकास और समुल्लास ही जीवन है। यह जीवन सभी सचेतनों का होता है। जीवन में कभी आधिभौतिक पक्ष, कभी आधिदैविक पक्ष तो कभी आध्यात्मिक पक्ष प्रमुखता से प्रस्फुटित होता है। जिसका निरूपण शास्त्रकार शास्त्रों में और कवि काव्यों में करते हैं। यह समग्र समाज व राष्ट्र का जीवन ही कवि के बुद्धिगुह्य सीप में साहित्य आकार लेता है। व्यक्तिगत, समाजगत और ब्रह्माण्डगत जीवनसूर्य का बिम्ब साहित्यचन्द्र में प्रतिबिम्बित होता हुआ सर्वांगीण और नवनवोन्मेषशाली होता है। अतः आचार्य त्रिपाठी ने जीवन और साहित्य के ऐक्य को सिद्ध करते हुए कहा है–जीवने चास्ति साहित्यं साहित्ये जीवनं तथा।[47]

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि आचार्य त्रिपाठी ने दार्शनिक दृष्टि को अपनाते हुए लोक के ही कवि द्वारा लोक के आनन्द के लिए लोक को देखकर अनुभूत अनुभूति को लोक के शब्दों के सम्यक् चयन पूर्वक अन्यतम शब्दगठन के द्वारा घटनाओं के पुनराविष्करण को ही काव्य माना है। समग्र चराचर जगत् की विविध घटनाओं को देखकर कवि के मानस में काव्यवस्तु या लोक का प्रथम उन्मेष होता है। कवि हृदय में उन्मिषित वस्तु का कवि के अन्तःकरण में सदसद् के विवेकपूर्ण विज्ञान का सँवार होता है। कवि हृदय में परिपक्वता को प्राप्त आह्लादानुभूति समुचित शब्द संघटना के माध्यम से प्रस्फुटित होने को मचलने लगती है और कवि काव्य-रचना में प्रवृत्त होता है। जैसा कि महाकवि अश्वघोष कहते हैं कि- जगद्धिताय बुद्धोहि बोधमाप्नोति शास्वतम् अतैव च जीवानां सर्वेषां तु हिते रतः।।[48]

सन्दर्भ

1. यजुर्वेद, 12.1.7।
2. तैत्तिरीयोपनिषद्, अनुवाक.6।
3. अभिनवकाव्यालंकार सूत्र।
4. वही, पृ. 44।
5. वही, पृ. 44।

Scanned by CamScanner

6. वही, अध्याय-2, पृ. 40।
7. वही,
8. वही, पृ. 4।
9. वही, पृ. 4।
10. नाट्यशास्त्र, 2.22।
11. अभिनवकाव्यालंकार सूत्र, 22।
12. वक्रोक्तिजीवितम्, 1.17।
13. अभिनवकाव्यलंकारसूत्र, पृ. 19।
14. मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं.. नाट्यशास्त्र अध्याय 16, कारिका 124।
15. 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' काव्यालंकार, 1.16।
16. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र,
17. 'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्नापदावलि', काव्यादर्श 1.10।
18. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, प्रथम अधिकरण, प्रथम अध्याय सूत्र 1।
19. काव्यमीमांसा,
20. अभिनव काव्यालङ्कार सूत्र 1.17 की विवृति।
20. अग्निपुराण, अध्याय 337, श्लोक 7।
21. 'शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि। बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि।।' वक्रोक्तिजीवितम्, प्रथम उन्मेष, कारिका, 7।
22. निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलङ्कृतम् रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।। सरस्वती कण्ठाभरण, प्रथम परिच्छेद, कारिका, 2।
23. ध्वन्यालोक, पृ. 39।
24. 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि।' काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, कारिका 4।
25. 'अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम् काव्यानुशासनं', पृ. 19।
26. 'गुणालंकारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ काव्यम्' प्रतापरुद्रयशोभूषणम्, काव्यप्रकरणम्, कारिका, 1।
27. 'निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता। सालङ्काररसानेकवृत्ति।।' चन्द्रालोक, प्रथम मयूख, कारिका, 1।
28. 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' साहित्यदर्पण प्रथम परिच्छेद, कारिका, 3।
29. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् रसगंगाधर, प्रथम आनन।
30. 'काव्यं ह्यदुष्टौ सगुणौ शब्दार्थौ सदलंकृती' काव्यदपर्ण, पृ. 90।
31. 'जायते परमानन्दो ब्रह्मानन्दसहोदरः। यस्य श्रवणमात्रेण तद्वाक्ये काव्यमुच्यते।।' साहित्य सुधासिन्धु, पृ. 7।
32. कवियमयानुरोधेन निबद्धौ शब्दार्थौ काव्यम् अभिराजयशोभूषण, पृ. 14।
33. 'सालङ्कारगुणौ काव्यं शब्दार्थौ दोषवर्जितौ। तथा कवीनां समयानुरोधेन बिन्धितम्।' मन्दारमरन्दपचम्पू, पृ. 186।
34. अत्र चमत्कारकरत्वं रसालंकारयुक्तत्वम्, अनघत्वं दोषरहितत्वम् यस्तु शब्दार्थसन्दर्भश्चमत् कारकरोऽनघः। काव्यं तद् गुणवच्चान्यत्काव्याभासमुदीर्यते।। रसदीर्घिका, पृ. 55।

Scanned by CamScanner

35. 'सत्यपि च रसादौ विना विलक्षण चमत्कारं अभिज्ञानां काव्यमिदमिति न प्रतीतिरप्रतीति साधु वदन्ति।' काव्यविलास, पृ. 3।
36. तत्र निर्दोष शब्दार्थगुणवत्ते सति स्फुटम् गद्यादिबन्धरूपत्वं काव्यसामान्यलक्षणम्। साहित्यसार, पृ. 7।
37. 'सहृदयहृदयाह्लादकरौ शब्दार्थौ काव्यम्' साहित्यविमर्श, पृ. 33।
38. 'काव्यं तत्र सहृदयाह्लादकशब्दार्थयोर्युगलम्', साहित्यमीमांसा, पृ. 11।
39. 'सालंकारं सगुणं दोषेण सर्वथा रहितम् सरसं कावसरसज्ञैरुदीर्यते भावसुन्दरं ज्ञेयम्।' काव्यप्रबन्ध
40. 'रम्यं शब्दार्थयुगलं काव्यमस्माभिरिष्यते' एवं हि चमत्कारविशिष्टं शब्दार्थयुगलं काव्यमिति फलितम् साहित्यबिन्दु, पृ. 4।
41. मनोहारिणौ शब्दार्थौ काव्यम् मनोहारिशब्दार्थघटितं वाक्यं काव्यमिति काव्यलक्षणम् काव्यकौमुदी, पृ. 3।
42. अभिराजयशोभूषणम्।
43. रहसविहारी द्विवेदी।
44. काव्यालंकार कारिका, पृ. 64।
45. डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा।
46. संस्कृत काव्यशास्त्र और परम्परा, पृ. 35।
47. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, पृ. 9।
48. वही, पृ. 11।
49. वही, पृ. 16।
50. वही, पृ. 18।
51. महाकवि अशवघोष कृत बुद्धचरित।

Scanned by CamScanner